CHETANA
INTERNATIONAL JOURNAL OF EDUCATION (CIJE)
Peer Reviewed/Refereed Journal
(ISSN: 2455-8729 (E) / 2231-3613 (P))
Impact Factor
SJIF 2023 - 7.286

Prof. A.P. Sharma
Founder Editor, CIJE
(25.12.1932 - 09.01.2019)

मध्यकालीन भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति

कमला
सहायक आचार्य,
सम्बल कॉलेज ऑफ एज्युकेशन
नवलगढ़ रोड़, शिवसिंहपुरा, सीकर
Email-kamalajhajharia1980@gmail.com, Mobile-9772594090

First draft received: 14.10.2023, Reviewed: 19.10.2023, Accepted: 29.11.2023, Final proof received: 27.12.2023

सार-संक्षेप

महिला आदिकाल से ही सामाजिक संरचना का महत्पूर्ण केन्द्र बिन्दु रही है। यही कारण है कि भारतीय सभ्यता और संस्कृति पर जब भी कोई बाह्य अथवा आन्तरिक परिवर्तनकारी और विचारात्मक शक्ति सक्रिय हुई, व्यवस्थाकारों का ध्यान स्त्रियों के अधिकार क्षेत्र, उससे सम्बन्धित नियमाचारों की ओर आकृष्ट हुआ। परिणामस्वरूप स्त्रियों की दशा में समय-समय पर परिवर्तन होते रहे तथा उनसे सम्बन्धित सामाजिक विधि-विधान भी युग की परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होते रहे हैं।

मुस्लिम परिवारों में फारसी परंपराओं को अपनाया जाता था, फलतः स्त्री का स्थान निम्न माना जाता था। तुर्की प्रभाव से सामान्य मुस्लिम युवक भी बहुविवाह करने लगे। संपन्न वर्ग के लोग अपने पत्नी के साथ ही दासियों से भी षारीरिक संबंध स्थापित करते थे, फलतः इन दासियों की संतानें आगे चलकर बराबरी का हक मांगने का प्रयास करती थी, ऐसी स्थिति में सामाजिक फूट एवं विघटन को बढ़ावा मिलता था। मध्यकाल पर दृश्टिपात करने पर ऐसे प्रकरण सामने आते है, जब दासियों से उत्पन्न संतानों ने मुष्किल पैदा की थी। कुतुबुद्दीन मुबारक अली तथा कैकुबाद के समय यह व्यवस्था के दोश स्पश्ट दिखाई देते है। मुगल काल भी इन दोशों से खाली न था। नुरजहाँ-जहांगीर प्रकरण तथा जहांगीर के प्रधान रानी द्वारा आत्महत्या के प्रमाण इन्हीं परिस्थितियों से जुड़े हुए है। इस युग में प्रचलित पर्दा प्रथा भी एक बहुत बड़ा दोश था लेकिन कुछ स्थानों पर स्त्रियों को अधिक स्वतंत्रता दी गई थी। उच्च परिवारों की स्त्रियों को षिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था। रजिया एवं नुरजहाँ की कार्यकुषलता अपने आप में एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। स्त्रियाँ पुरूशों की तरह वेष-भूशा का प्रयोग करती थी और खेल-कुद मे भाग लेती थी। मुस्लिम समाज में विधवा विवाह तथा तलाक की स्वीकृति थी। उन्हें संपति में समान अधिकार था। इन सभी विषेशताओं के कारण साधारणतः मुसमानी समाज का पारिवारिक जीवन सरल तथा सुखमय था।

मुख्य शब्द : *मध्यकालीन भारत, स्त्री शिक्षा, भारतीय संस्कृति आदि.*

प्रस्तावना

मध्यकालीन भारतीय समाज दो वर्गों में बंटा हुआ था– हिन्दू और मुस्लमान। हिन्दू वर्ग बहुसख्यंक था, लेकिन शासन के लिए राज्य के उच्च पद मुस्लमानों के लिए सुरक्षित थे। इस प्रकार के वर्ग विभेद से हिन्दू और मुस्लमान में स्पष्ट अंतर दिखाई देता है। मध्यकालीन सामाजिक वर्ग का अध्ययन अधूरा रह जाता है यदि उस युग की स्त्रियों की स्थिति की चर्चा न की जाये। मध्यकालीन भारत में महिलाओं की स्थिति पर विमर्श करने से पूर्व यह आवश्यक प्रतीत होता है कि महिला शिक्षा के सन्दर्भ में इस्लामिक दार्शनिकों एवं विचारकों के मत पर दृष्टिपात किया जाये तथा साथ ही इस्लाम के प्रारम्भिक दिनों में अथवा मध्यकालीन भारत के पूर्व स्त्री शिक्षा की स्थिति पर भी पुनर्विचार आवश्यक प्रतीत होता है।

इस्लामी युवा समूह के शिक्षण–प्रशिक्षण से सम्बन्धित जितने भी तथ्य है वह बालकों से सम्बन्धित है। बालिकाओं की शिक्षा इन नियमों के अधीन नहीं मानी जाती है। चूँकि बालिकाओं हेतु मात्र नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा ही आवश्यक समझी जाती थी, अतः उनके बौद्धिक विकास की आवश्यकता की उपेक्षा कर दी गई।

स्त्री शिक्षा

महिलाओं के सम्बन्ध में पैगम्बर मुहम्मद साहब की विचारधारा को स्त्री शिक्षा के विरोधी सतत् रूप से प्रस्तुत करते रहे। सूरा–अलनूर के आधार पर यह कहा जाने लगा कि स्त्रियों के लेखन कला के सन्दर्भ में विशेष ज्ञान मत दो, बल्कि उन्हें 'हस्तकलाओं', 'कताई–बुनाई' की कला–कौशल का विशेष रूप से प्रशिक्षण दो। परन्तु इस सपूरा का अर्थ कम उम्र की लड़कियों के लिए उचित कला कौशलों के प्रशिक्षणों से वंचित करने से लगाना निश्चित रूप से न्यायसंगत नही है। पैगम्बर मुहम्मद पर उतरने वाली इस 'वाह्य' का संकेत मात्र संदेहास्पद एवं अनैतिक चरित्र की औरतों से ही है।

अतः यह सूरा की आड़ में स्त्री–शिक्षा के विरोध में अत्यन्त कठोर चेतावनियाँ दी गयी। फलतः इब्नमिसहाविट जैसे दार्शनिक भी स्त्री–शिक्षा के प्रति नकारात्मक विचारधारा प्रस्तुत करते है अपनी 'जाबादिने खिरदे' में वह उमरा प्रथम की बातों को उद्धृत करते हुए उन पर कठोर नियंत्रण का परामर्श देते है जिसके अन्तर्गत उन्हें लेखन कला की शिक्षा देने पर प्रतिबन्ध भी सम्मिलित है।

लुकमान जैसे विद्वान, कवि एवं संत एक बालिका को शिक्षा ग्रहण करते हुए देखकर कहते है कि यह किसके लिए तलवार को चमकाया जा रहा है यानि यह सुशिक्षित बालिका अपने भावी पति के लिए खतरा सिद्ध हो सकती है। समाज में यह विचारधारा व्याप्त हो गयी थी कि वह स्त्री जो लेखन कार्य की शिक्षा प्राप्त करती है वह विषधारी सर्प के समान है जिसे विष पीने को दिया जाता है। लोगों में यह भी विश्वास प्रचलित था कि स्त्रियों को काव्यात्मक साहित्य से बहुत दूर रखना चाहिए। परन्तु उपरोक्त विचारों के अवलोकन के समय इस बात पर अवश्य ध्यान देना चाहिए कि इस प्रकार के विचार जातिगत विज्ञान के क्षेत्र के अंतर्गत ही आते थे। परन्तु इन्हें इस्लाम के मौलिक सिद्धान्तों का एक अंग स्वीकार करना असंगत है। मुस्लिम सभ्यता के इतिहास जो अत्यंत कठोर परम्परावादी मार्ग पर अग्रसर प्रतीत होता है, वहाँ ऐसे सिद्धान्तों के खण्डन के अनेक उदाहरण दृष्टिगोचर होते है, जैसे हदीस के सम्प्रेषण में कितनी ही स्त्रियों ने भाग लिया था, जो इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि

धार्मिक क्षेत्र में स्त्रियों के लेखन कला के अधिकार को अमान्यता नहीं प्रदान की गई थी।

भारतीय संस्कृति

विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से प्रमुख एक भारतीय संस्कृति का आरम्भ ताम्र–पाषाण युग में सिन्धु घाटी सभ्यता से माना जाता है। इस सभ्यता में महिलाओं एवम् पुरूषों को समाज में समान अधिकार प्राप्त थे। सिन्धु सभ्यता के लोग बिना किसी लैंगिक भेदभाव किये सभी कार्यों में भी समान रूप से भाग लेते थे। महिलाओं को विशेष महत्व देते हुये कुछ क्षेत्रों में तो उसे पुरूषों से भी कहीं उच्च स्थान प्रदान किया जाता था। महिला में प्रजनन क्षमता होने के कारण सृजन–शक्ति के रूप में न केवल उसे विशेष सम्मान दिया जाता था बल्कि उनका समाज भी मातृ–सत्तात्मक होता था।

वैदिक काल में भी महिलाओं के प्रति सम्मान की यही भावना अनवरत रूप से जारी रही। इस काल में जीवन के सभी क्षेत्रों में महिलाओं को भी पुरूषों के ही समान अधिकार प्राप्त थे। विद्याध्ययन की आयु में बालकों की ही भाँति बालिकाओं का भी उपनयन संस्कार किया जाता था तथा उन्हें भी शिक्षा–प्राप्ति का समान अधिकार सहजता से प्राप्त था। पुरूषों की ही भाँति उन्हें भी धार्मिक क्रियाओं के सम्पादन में भी समान रूप से भाग लेने का अधिकार प्राप्त था। महिलाओं का सम्मान और महत्व इस तथ्य से भी स्पष्ट हो जाते है कि, वैवाहिक जीवन में पत्नी को अर्द्धांगिनी और गृहस्वामिनी जैसी अधिकार युक्त संज्ञाओं से सम्बोधित किया जाता था। वैदिक काल की उच्च–शिक्षिता महिलाओं में घोषा, लोपा–मुद्रा, विश्ववारा, अपाला, श्रद्धा, गार्गी, मैत्रेयी, गन्धर्व गृहीता, कात्यायनी आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमे से कुछ विदुषी महिलाओं ने तो वैदिक सूक्तों की रचना में भी अपना बहुमूल्य योगदान दिया था। इस काल में कन्याओं का विवाह उनके वयस्क होने पर ही किया जाता था। अर्थात् बाल विवाह जैसी कुरीति का समाज में कोई स्थान नही था। पर्दा–प्रथा का न होना तथा विधवा –पुनर्विवाह का प्रचलन इस काल में महिलाओं के विशेष महत्व का परिचायक तथ्य है। किन्तु उत्तर वैदिक काल में महिलाओं के महत्व एवम् सम्मान में गिरावट आने लगी। अब उनपर कठोर प्रतिबन्ध लगने आरम्भ हो गये तथा उनके दायित्व को गृह कार्य तक सीमित करने के प्रयास किये गये। बाल विवाह जैसी कुरीति का सर्वप्रथम आरम्भ होना इस काल का सबसे दुःखद पहलु है। प्राचीन काल में ही कुछ राज्यो में गणिका तथा नगरवधू जैसी कुप्रथायें भी विकसित होने लगी। वैशाली की आम्रपाली नगरवधू का सर्वाधिक प्रसिद्ध उदाहरण है।

मध्यकालीन भारत में कन्या के रूप में स्त्रियों की स्थिति पुरूषों की तुलना में दयनीय थी। पुत्री की प्राप्ति से परिवार उतना प्रसन्न नहीं होता था जितना पुत्र की प्राप्ति से प्रसन्न होता था। राजशेखर के ग्रंथों में इस बात के प्रमाण उपलब्ध होते हैं कि पुत्र की अपेक्षा कन्या को कम महत्व प्राप्त था। पुत्र को कुल का दीपक स्वीकार किया जाता था तथा कन्या होने से लोग चिन्तित हो उठते थे। विद्वशालभंजिका नाटक में यह भी उल्लेख मिलता है कि लाटदेश के अधिपति चन्द्रवर्मा को पुत्री उत्पन्न हुई थी, किन्तु पुत्र उत्पन्न न होने के कारण राजा ने पुत्री प्रसव की सूचना पुत्र प्रसव के रूप में प्रचारित की थी। अल्बरूनी ने भी लिखा है कि कन्या उत्पत्ति से लोग पुत्रोत्पात्ति को अत्यधिक सौभाग्य की बात मानते थे। कथासरित्सागर में भी यह उल्लेख मिलता है कि कन्या जन्म से लोग काफी शोक संतप्त होते थे, जबकि कन्यायें पुत्र से भी अधिक उत्तम तथा इहलोक और परलोक दोनों में कल्याण देने वाली कही गयी हैं क्योंकि कन्यादान से परलोक में जो सुख मिलता है वह पुत्रों से नहीं मिल सकता। हर्षचरित में बाणभट्ट ने कन्या के विषय में लिखा है कि 'ज्यों–ज्यों लड़की जवान होती है उसके माता–पिता की चिन्तायें बढ़ जाती हैं। जिस प्रकार बढ़ती हुई नदी, वर्षाकाल में, मेघों के उफान होने पर तट को बड़ी–बड़ी भंवरियों में डाल देती है उसी प्रकार बढ़ती हुई कन्या स्तनों के उठने के समय पिता को चिन्ता में डाल देती है। कन्याओं के यौवन आरम्भ होते ही पिता सन्ताप की अग्नि का ईंधन बन जाते हैं। जैसे मेघ आकाश में उठकर दिन को अंधकारमय कर देते हैं वैसे ही लड़की के स्तनों की उन्नति से पिता का हृदय अंधकार से भर जाता है। वह आगे लिखता है कि इन सब कारणों से अविभूत कर देने वाली यह शोकाग्नि की दाह शक्ति है जो कि संतान की दृष्टि से बराबर होने पर भी अच्छे लोग कन्या के उत्पन्न होने से दुःखी होते हैं। इसी कारण सज्जन लोग जन्म लेते ही अपने आँसू से कन्याओं को जल समर्पित करते हैं। इसी डर से स्त्री का पाणिग्रहण किए बिना ही घर द्वार छोड़कर मुनि लोग एकान्त जंगलों की शरण ले लेते हैं। यहाँ यह भी कहा गया है कि माताएँ केवल धाय की भाँति कन्याओं को बढ़ाने मात्र के उपयोग में आती हैं। कन्यादान में तो पिता ही प्रमाण है। केवल बिछुड़ जाने की दया के कारण पुत्र स्नेह से कन्या स्नेह बढ़ जाता है। कथासरित्सागर में भी यह कहा गया है कि कन्यादान के बिना पुरूष पापशान्ति के लिए दूसरा कोई उपाय नहीं है। राजस्थानी लेखक सिद्धार्थसूरि एक कदम और आगे बढ़कर यह घोषित करते हैं कि इनका जन्म संताप का कारण होता है और ये धर्म को क्षति प्रदान करने वाली होती हैं। गरीबी में ये महान् संकट का कारण बन जाती हैं, कोई अभिभावक तभी संतुष्ट होता है जब वह वर को अपनी कन्या उन सभी वस्तुएँ जिनके द्वारा वह संतोष का अनुभव करता है, के साथ प्रदान कर देता है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि कन्या के विवाह को लेकर मध्ययुगीन समाज कन्या जन्म से काफी शोक संतप्त था, किन्तु पुत्रोप्पत्ति के समान ही कन्या का जन्मोत्सव भी बड़े हर्ष और उल्लास से मनाये जाने का उल्लेख मिलता है। कथासरित्सागर में यह उल्लेख है कि विद्याधर राजा हेमप्रभ ने अपने पुत्रोत्पत्ति के समान ही कन्या 'रत्नप्रभा' का जन्मोत्सव भी बड़े हर्ष और उल्लास के साथ मनाया था।

सारांश

हिन्दू समाज में स्त्रियों का स्थान सामाजिक परिवर्तन के कारण काफी बदल गया था। वह आदरनीय स्थान जो स्त्रियों को तुर्को के समाज में आने से पहले प्राप्त था बराबर गिरता गया। हिन्दू घर में लड़कियों को प्रारंभ से ही अपने बड़ों का आदर करना सिखाया जाता था। वह अपने पति को ईश्वर के समान मानती थी और उसकी हर आज्ञा का पालन करती थी। उन्हें पतिव्रत धर्म का पालन करना पड़ता था। गृह कार्य ही स्त्रियों का उच्च क्षेत्र था। मुगल काल के समय बाल विवाह की प्रथा थी। यहां तक की मुस्लमान लोग भी अपनी कन्याओं का दस वर्ष में विवाह कर देते थे। हिन्दुओं में सती प्रथा प्रचलित थी। वे विधवायें जो सती नहीं होती थी उनको समाज में नीची दृष्टि से देखा जाता था। अकबर और जहांगीर ने इस प्रथा को अंत करना चाहा लेकिन सफल नहीं हुआ। इस काल में पर्दा प्रथा मुस्लमानों में काफी प्रचलित थी उतनी हिन्दू में नहीं थी। तुर्को के भारत आने के बाद हिन्दू स्त्रियां भी पर्दा आरंभ कर दिया था ताकि वह अपने सतीत्व की विदेशियों से रक्षा कर सकें।

जहां तक साधारण वर्ग की स्त्रियों की शिक्षा का संबंध था उसका कोई प्रबंध न था। उनमें से कुछ ही स्कूल में शिक्षा प्राप्त करती थी, जो निजी घर पर किसी गृह स्त्री द्वारा खोले जाते थे। अकसर वह अपने पिता द्वारा ही शिक्षा प्राप्त करती थी। गरीब घर की लड़कियां अनपढ़ ही रहती थी। कभी–कभी मुल्ला या, पंडित उन्हें कुछ पढ़ा देते थे। पर्दा प्रथा के कारण लड़कियों की शिक्षा न तो नियंत्रित थी न ही उस समय उनके लिये अलग से विशेष स्कूल होते थे। फिर विवाह जल्दी होने के कारण उनकी पढ़ाई भी समाप्त हो जाती थी। यद्यपि मुगल काल में स्त्री शिक्षा न थी फिर भी कुछ स्त्रियों ने इस समय के साहित्य में विशेष योगदान दिया। इस काल बहुत सी कवित्रियां हुई है, जिन्होंने विभिन्न विषयों पर कविताएं की है। उनकी कविता के विषय अधिकांशतः गुरू की महिमा, संतों की बड़ाई, ज्ञान के महत्व इत्यादि थे। उन्होंने राम एवं कृष्ण दोनों की ही भक्ति से प्रभावित होकर कविता की है। इनमें इन्दुमति, कलमाशी देवी, दयाबाई, मीराबाई बावरी साहेब, गफूर अली आदि के नाम प्रसिद्ध है। प्रवीनराय परतुर शेख रंगरेजिन तथा रूपमती ने श्रृंगार रस पर कविताएं लिखी थी।

निष्कर्षत

कहा जा सकता है कि सल्तनत काल एवं मुगलकाल तक स्त्रियों के दशा में विशेष परिवर्तन नहीं आया था। सामाजिक रिवाजों के कारण स्त्रियों का जीवन काफी बंधनों में जकड़ा हुआ था। पुत्री का जन्म अशुभ माना जाता था। बाल विवाह होने के कारण जो स्त्रियां जल्दी विधवा जो जाती थी, उनका जीवन काफी कष्टमय से गुजरता था क्योंकि वह पुनः विवाह नहीं कर सकती थी। मुस्लमान पुरूष बहुविवाह कर सकते थे। उनके यहां तलाक प्रथा प्रचलित थी, जो हिन्दूओं में नहीं थी। वैसे तो मुस्लिम स्त्रियों की दशा भी अच्छी नहीं थी फिर भी उन्हें कुछ विशेषाधिकार प्राप्त थे, जो हिन्दू स्त्रियों को प्राप्त नहीं थे। मुस्लमान स्त्रियां विधवा होने के बाद पुनः विवाह कर सकती थी। सती होने की आवश्यकता नहीं थी। अपने पिता की संपति में भी उन्हें काफी भाग मिलता था। विशेष परिस्थिति में वह तलाक भी कर सकती थी। हिन्दू स्त्रियों को ऐसी कोई स्वतंत्रता न थी। इतना सब होते हुये भी स्त्रियों ने विभिन्न क्षेत्रों में भाग लिया तथा अपनी पहचान बनायी।

संदर्भ सूची

1. अल्तेकर, अनन्त सदाशिव : प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, वाराणसी, 1968।
2. ओझा, गौरीशकर हीराचन्द्र : मध्यकालीन भारतीय संस्कृति (600. 1200), इलाहाबाद, 1951।
3. द पोजिशन ऑफ वूमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, दिल्ली, 1956।
4. अग्रवाल, वासुदेवशरण : कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1978।
5. अग्रवाल, गोविन्द : सतीप्रथा एक अध्ययन एवं विवेचन, देखिए, मरूभारती, अप्रैल, 1980 अंक–1, पृ0–30।
6. इलियट एण्ड डाउसन : भारत का इतिहास, जिल्द–1, 1973, जिल्द 2.3, 1974 आगरा (हिन्दी अनुवाद)।
7. हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 1943।
8. मिश्रा, रेखा : वीमेन इन मुगल इंडिया, दिल्ली।
9. शर्मा, गोपीनाथ : राजस्थान का इतिहास, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा।
10. श्रीवास्तव, कृष्ण चन्द्र : प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा।
11. श्रीवास्तव, आर्शीवादीलाल : मुगलकालीन भारत, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा।
12. उपाध्याय वासुदेवशरण : पूर्व–मध्यकालीन भारत (6वीं से 12वीं शती ई0), प्रयाग।
13. उपाध्याय भगवतशरण : कालिदास का भारत, भाग 1–2, वाराणसी, 1963–64।
14. उपाध्याय, रामजी : प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, इलाहाबाद, 1951।
15. उपाध्याय, वी. : सोशल–रिजिशस कण्डीशन ऑफ नार्दन इण्डिया (700.1200 ए.डी.), वाराणसी, 1964।
16. वामन पुराण : ए स्टडी, वाराणसी, 1964।

17. वर्मा हरिशचन्द्र : मध्यकालीन भारत, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।